

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध अध्याय 13: राजा निमि

25 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब राजा सीरध्वज जनक यज्ञ के लिए भूमि तैयार करते हुए हल चलाते हैं, तब दिव्य बालिका सीता उनके हल की नोक से प्रकट होती हैं — मिथिला के ऋषि-राजाओं के वंश में लक्ष्मी का अवतरण।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विङ्गम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं एवं शिक्षाओं की एक श्रद्धापूर्ण यात्रा। नवम स्कन्ध का यह तेरहवाँ अध्याय राजा निमि के अपने गुरु वसिष्ठ के साथ हुए घातक शाप-प्रसंग से लेकर उनसे उत्पन्न मिथिला के ऋषि-राजाओं के वंश तक की कथा कहता है — यह अध्याय देह की क्षणभंगुरता, आत्मा की स्वतन्त्रता, और राजत्व के साथ परम ज्ञान के मिलन के विषय में है।

अध्याय-पारेचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 9 (नवम स्कन्ध)
- अध्याय: 13 (त्रयोदश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: महाराज निमि का वंश
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए — सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में शौनक ऋषि एवं ऋषि-समुदाय को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मिथिला (विदेह) राज्य, इक्ष्वाकु-पुत्र महाराज निमि के वंश में स्थापित
- केन्द्रीय विषय: निमि एवं वसिष्ठ का परस्पर शाप, निमि का विदेह रहने का चुनाव, जनक का जन्म एवं मिथिला की स्थापना, और विदेह के ऋषि-राजाओं का वंश
- मुख्य श्लोक-परास: नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 1-27
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

निमि और वसिष्ठ का शाप

शुकदेव ने निमि के वंश का वर्णन आरम्भ किया। इक्ष्वाकु-पुत्र राजा निमि ने एक महान् यज्ञ आरम्भ किया और ऋषि वसिष्ठ को अपना प्रधान पुरोहित होने का निमन्त्रण दिया। किन्तु वसिष्ठ ने उत्तर दिया कि वे पहले ही इन्द्र के यज्ञ के लिए नियुक्त हो चुके हैं और निमि से लौटने तक प्रतीक्षा करने को कहा। निमि मौन रहे, और ऋषि इन्द्र का यज्ञ करने चले गए। यह विचार करके कि जीवन क्षणभंगुर है, विचारशील निमि ने प्रतीक्षा नहीं की, बल्कि अन्य पुरोहितों के द्वारा यज्ञ आगे बढ़ाया। लौटकर और यह देखकर कि उनके शिष्य ने उनके बिना ही आरम्भ कर दिया, वसिष्ठ ने राजा को शाप दिया, “अपने को विद्वान् मानने वाले निमि का शरीर गिर जाए!”

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य तं निर्वर्त्यागतो गुरुः ।

अशपत् पतताद् देहो निमिः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥

śiṣya-vyatikramam vīkṣya taṁ nirvartyāgato guruḥ aśapat patatād deho nimeḥ paṇḍita-māninaḥ

अर्थ: लौटकर अपने शिष्य का अतिक्रमण देखकर, गुरु ने उसे शाप दिया: “अपने को विद्वान् मानने वाले निमि का शरीर गिर जाए।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 4)

आध्यात्मिक ज्ञान में निपुण निमि को यह अन्याय सहन नहीं हुआ, और उन्होंने भी अपने गुरु को शाप लौटा दिया — यह कहते हुए कि लोभ के कारण उनकी धर्म-बुद्धि जाती रही है, अतः उनका शरीर भी गिरेगा।

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।

तवापि पतताद् देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

nimiḥ pratidadau śāpaṁ gurave 'dharma-vartine tavāpi patatād deho lobhād dharmam ajānataḥ

अर्थ: निमि ने अपने गुरु को, जिन्हें वे अधर्म-आचरण करते देख रहे थे, प्रति-शाप दिया: “आपका शरीर भी गिर जाए, क्योंकि लोभवश आप धर्म को नहीं जान पाए।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 5)

इन शब्दों के साथ निमि ने अपना शरीर त्याग दिया; और वसिष्ठ ने भी देहत्याग किया, जो बाद में मित्र एवं वरुण देवताओं से उर्वशी अप्सरा के द्वारा पुनर्जन्म पाए।



जब उनके गुरु वसिष्ठ, पहले ही इन्द्र के यज्ञ में नियुक्त, प्रतीक्षा करने को कहते हैं, तब विचारशील राजा निमि अन्य पुरोहितों के द्वारा अपना यज्ञ आरम्भ करते हैं — और गुरु एवं शिष्य, प्रत्येक दूसरे में दोष देखते हुए, यह शाप देते हैं कि उनके दोनों के शरीर गिर जाएँ (श्लोक 1-5)।

निमि का विदेह रहने का चुनाव

निमि का यज्ञ करा रहे ऋषियों ने उनके शरीर को सुरक्षित रखा और, यज्ञ की समाप्ति पर, एकत्र देवताओं से उन्हें पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। जब देवताओं ने स्वीकृति दी, तब निमि की आत्मा ने ऊँचे स्वर में कहा कि वह पुनः किसी शरीर में बँधना नहीं चाहती। कुछ साधक, उन्होंने समझाया, इस भय से कि उन्हें उसे फिर कभी त्यागना न पड़े, कोई भी शरीर लेने से ही इनकार कर देते हैं; किन्तु जिन ऋषियों का मन श्री हरि में लीन है, वे इस भय से परे हैं, और सहर्ष उनके चरणकमलों की आराधना करते हैं।

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ।

भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥

yasya yogam na vāñchanti viyoga-bhaya-kātarāḥ bhajanti caraṇāmbhojaṁ munayo hari-medhasaḥ

अर्थ: जो पुनः शरीर त्यागने के भय से भयभीत रहते हैं, वे शरीर लेने से ही इनकार करते हैं; किन्तु जिन ऋषियों का मन हरि में लीन है, वे बिना किसी ऐसे भय के उनके चरणकमलों की आराधना करते हैं। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 9)

उन्हें, उन्होंने कहा, ऐसे शरीर की कोई इच्छा नहीं जो दुःख, शोक एवं भय लाता है, और जिसका पीछा मृत्यु सर्वत्र करती है, जैसे जल में मछली का।

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥

dehaṁ nāvarurutse 'haṁ duḥkha-śoka-bhayāvaham sarvatrāsya yato mṛtyur matsyānām udake yathā

अर्थ: मैं पुनः वह शरीर नहीं लेना चाहता, जो दुःख, शोक एवं भय लाता है, और जिसमें मृत्यु प्राणी को सर्वत्र भयभीत करती है, जैसे जल में मछली का पीछा करती है। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 10)

इस अध्याय की सबसे गहरी शिक्षा यहीं है। निमि शरीर को उसी भय से अस्वीकार नहीं कर रहे जो मायावादी को समस्त देहधारण से विमुख करता है; उनका संकोच शरीर का भय नहीं, बल्कि उसमें भगवान् को भूल जाने का भय है। जिस आत्मा का मन हरि की सेवा में लीन है, वह यह गणना नहीं करती कि उसे कैसा शरीर मिला है — उसे न पदार्थ से घृणा है, न मुक्ति को पलायन मानने की लालसा। निमि वस्तुतः जो माँगते हैं, वह रूप से मुक्ति नहीं, बल्कि रूप के भीतर ही मुक्ति है — एक ऐसा अस्तित्व जो भगवान् के स्मरण में इतना पूर्ण रूप से समर्पित हो कि कोई भी शरीर, स्थूल या सूक्ष्म, उसे कभी बाँध न सके (श्लोक 9-10)।

देवताओं ने उनकी इच्छा पूर्ण की: वे विदेह रहकर, समस्त देहधारियों के नेत्रों में इच्छानुसार वास करेंगे, उनकी पलकों के खुलने एवं मुँदने से पहचाने जाते हुए — सदा आत्मा के चिन्तन में स्थित।

देवा ऊचुः
विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

devā ūcuḥ videha uṣyatām kāmaṁ locaneṣu śarīriṇām unmeṣaṇa-nimeṣābhyām lakṣito 'dhyātma-saṁsthitaḥ

अर्थ: देवताओं ने कहा: आप, विदेह होकर, समस्त देहधारियों के नेत्रों में इच्छानुसार वास करें, उनकी पलकों के खुलने एवं मुँदने से पहचाने जाते हुए, सदा आत्मा में स्थित। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 11)



नए शरीर में जीवन का प्रस्ताव पाकर, निमि की मुक्त आत्मा उसे अस्वीकार कर देती है, और इसके बजाय — देवताओं की कृपा से — प्रत्येक प्राणी के नेत्रों के पलक झपकने में विदेह रूप में वास करना चुनती है, सदा आत्मा के चिन्तन में स्थित (श्लोक 8-11)।

जनक का जन्म और मिथिला की स्थापना

राजाविहीन प्रजा के लिए अराजकता का संकट देखकर, महान् ऋषियों ने निमि के शरीर का मन्थन किया, और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस मन्थन से उत्पन्न होने के कारण वह जनक कहलाया; विदेह (निमि) के वंश में उत्पन्न होने के कारण वैदेह कहलाया; और मिथिला नगरी बसाने के कारण मिथिल कहलाया।

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः ।

मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥

janmanā janakaḥ so 'bhūd vaidehas tu videhajaḥ mithilo mathanāj jāto mithilā yena nirmitā

अर्थ: अपने जन्म से वह जनक कहलाया; विदेह के वंश में उत्पन्न होने के कारण वैदेह; और मन्थन से उत्पन्न होकर मिथिला बसाने के कारण मिथिल कहलाया। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 13)



ताकि प्रजा राजाविहीन न रह जाए, महान् ऋषि निमि के सुरक्षित शरीर से एक देदीप्यमान पुत्र को उत्पन्न करते हैं — जनक, विदेह वंश के संस्थापक एवं पवित्र मिथिला नगरी के निर्माता (श्लोक 12-13)।

सीता का प्राकट्य और मिथिला के ऋषि-राजा

जनक से राजाओं की एक दीर्घ परम्परा उतरी — उदावसु, नन्दिवर्धन, सुकेतु, देवरात, और अनेक अन्य। उन्हीं में सीरध्वज थे, जिन्हें यह नाम इसलिए मिला क्योंकि, यज्ञ के लिए भूमि तैयार करने हेतु पृथ्वी जोतते समय, दिव्य सीता उनके हल की नोक से प्रकट हुई।

ततः शीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।

सीता शीराग्रतो जाता तस्मात् शीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥

tataḥ śīradhvajo jajñe yajñārthaṁ karṣato mahīm sītā śīrāgrato jātā tasmāt śīradhvajaḥ smṛtaḥ

अर्थ: तत्पश्चात् सीरध्वज हुए; यज्ञ के लिए पृथ्वी जोतते समय, सीता उनके हल के अग्रभाग से प्रकट हुई, और इसी कारण वे सीरध्वज, “हल-ध्वज वाले,” कहलाए। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 18)

वंश कुशध्वज, धर्मध्वज एवं उनके पुत्रों कृतध्वज एवं मितध्वज के माध्यम से आगे बढ़ा; कृतध्वज से केशिध्वज हुए, जो आत्म-विद्या में निपुण थे, और मितध्वज से खाण्डिक्य हुए, जो कर्मकाण्ड में निपुण थे। अनेक अन्य राजाओं के माध्यम से — बहुलाश्व, कृति एवं महावसी तक — मिथिला का वंश आगे बहता रहा। और शुकदेव ने घोषित किया कि मिथिला के ये सब राजा आत्मज्ञान के आचार्य थे, जो, याज्ञवल्क्य जैसे महान् योगियों की कृपा से, गृहस्थ रहते हुए भी द्वन्द्वों — सुख-दुःख, लाभ-हानि — से मुक्त रहे।

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।

योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥

ete vai maithilā rājann ātma-vidyā-viśāradāḥ yogeśvara-prasādena dvandvair muktā gṛheṣv api

अर्थ: मिथिला के ये सब राजा, हे राजन्, आत्मज्ञान के आचार्य थे; योगेश्वरों की कृपा से वे गृहस्थ-जीवन में भी द्वन्द्वों से मुक्त रहे। (नवम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 27)



मिथिला के राजा, आत्म-विद्या के आचार्य, गृहस्थ रूप में शासन करते हुए भी द्वन्द्वों से शान्त एवं मुक्त रहते हैं — याज्ञवल्क्य जैसे महान् योगियों की कृपा से आशीर्वादित (श्लोक 20-27)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एक छोटा अभिमान भी बड़ा पतन ला सकता है। निमि एवं वसिष्ठ दोनों उच्च आत्माएँ थीं, फिर भी प्रत्येक ने दूसरे में दोष देखा और शाप दिया; दोनों ने अपने शरीर खोए। अध्याय चेतावनी देता है कि ज्ञानी भी अभिमान या शीघ्रता से कितनी सहजता से गिर सकते हैं (श्लोक 4-5)।
2. देह क्षणभंगुर है, और आत्मा स्वतन्त्र है। पुनः जीवित होने का अवसर पाकर निमि इनकार कर देते हैं, शरीर को दुःख के एक घर के रूप में देखते हुए जिसका पीछा मृत्यु सर्वत्र करती है। उनका चुनाव देह से परे अमर आत्मा की ओर संकेत करता है (श्लोक 9-10)।
3. शरीर को अस्वीकार करने वाला भय नहीं, प्रेम है। जो लोग शरीर को पुनः त्यागने के भय से देहधारण से इनकार करते हैं, उनके विपरीत निमि का इनकार एकनिष्ठ भक्ति है: उनकी एकमात्र इच्छा श्री हरि की सेवा करना है, चाहे किसी भी शरीर में या बिना शरीर के (श्लोक 9-10)।
4. दिव्य अप्रत्याशित स्थानों में प्रकट होता है। एक शरीर के मन्थन से जनक आते हैं; एक हल की रेख से सीता आती हैं। कृपा वहाँ आती है जहाँ हम कम से कम अपेक्षा करते हैं, और पवित्र सबसे साधारण भूमि से उत्पन्न हो सकता है (श्लोक 13, 18)।
5. ज्ञान एवं सांसारिक जीवन साथ-साथ चल सकते हैं। मिथिला के राजा गृहस्थ रूप में शासन करते हुए भी आत्मज्ञानी रहे, सुख-दुःख से अछूते। मुक्त होने के लिए संसार से भागना आवश्यक नहीं; केवल आत्मा को जानना आवश्यक है (श्लोक 27)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय का विचित्र एवं सुन्दर हृदय एक ऐसा राजा है जो, जीवन वापस दिए जाने पर, उसे मृदुता से अस्वीकार कर देता है। निमि ने देह को देख लिया है — कटुता से नहीं, बल्कि एक ऋषि की स्पष्ट दृष्टि से — और उसे एक नाजुक घर के रूप में जान लिया है जिसके प्रत्येक द्वार पर दुःख एवं मृत्यु मँडराते हैं। और इसलिए, एक और जीवन को पकड़ने के बजाय, वे केवल आत्मा में स्थित रहने की प्रार्थना करते हैं, और देवता उन्हें हमारे नेत्रों के पलक झपकने में ही एक घर दे देते हैं। उस चित्र में कुछ अद्भुत रूप से कोमल है: कि मृत्यु से न डरने वाली एक आत्मा की स्मृति प्रत्येक जीवित प्राणी की सबसे छोटी, सबसे निरन्तर गति में जीवित रहती है। इस शान्त केन्द्र के चारों ओर अध्याय अपने चमत्कारों को सजाता है — एक पुत्र जो मन्थन से उत्पन्न हुआ ताकि प्रजा नेता-विहीन न रहे, देवी सीता जो जुती हुई पृथ्वी की एक रेख से उठीं, राजाओं का एक सम्पूर्ण वंश जिन्होंने शासन किया, विवाह किया, परिवार पाले, फिर भी आत्मा पर अपनी पकड़ कभी न खोई। भागवत मानो हमें बताता है कि मुक्ति कहीं दूर नहीं, केवल संसार त्यागने वालों के लिए आरक्षित नहीं, बल्कि एक राजमहल में भी, एक हल के पीछे भी, हमारे नेत्रों के साधारण खुलने-मुँदने में भी सुलभ है — यदि केवल, मिथिला के राजाओं के समान, हम अपने हृदय को भीतर के अमर भगवान् पर स्थिर रखें।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, नेत्रों के पलक झपकने में छिपी कोमल शिक्षा को ग्रहण करें। दिन भर कई बार — जब भी आप स्वयं को पलक झपकाते हुए पाएँ — उसे स्मरण की एक छोटी घण्टी बनने दें, विदेह निमि एवं अपने भीतर की अमर आत्मा को स्मरण कराते हुए, और मौन रूप से ये शब्द अर्पित करें, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर, मिथिला के ऋषि-राजाओं की भावना में, दिन के उतार-चढ़ावों — एक लाभ एवं एक हानि, एक प्रशंसा एवं एक अपमान — का सामना उसी स्थिर हृदय से करें, यह स्मरण करते हुए कि आप यह नाजुक शरीर नहीं बल्कि उसमें वास करने वाली एवं भगवान् की आत्मा हैं। इस शान्त समता के साथ जिया गया एक ही दिन आपका अभ्यास बने, स्वयं को यह सिद्ध करते हुए कि ऋषियों की शान्ति एक साधारण गृहस्थ-जीवन के बीच भी सम्भव है।

उपसंहार

नवम स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय हमें महाराज निमि के उस शरीर के शान्त अस्वीकार के साथ छोड़ता है जिसकी उन्हें अब आवश्यकता नहीं थी, और मिथिला के उस सम्पूर्ण राज-वंश के साथ जिन्होंने शासन किया, विवाह किया एवं परिवार पाले, फिर भी भीतर के आत्मा से दृष्टि कभी न हटाई। उनकी मुक्ति कभी इस बात पर निर्भर नहीं थी कि वे कहाँ खड़े हैं — राजमहल हो या वन, हल हो या सिंहासन — बल्कि इस पर कि उनका हृदय किसकी सेवा करता है। हम भी, उन्हीं की भाँति, यह सीखें कि मुक्ति न शरीर से भागने में है, न संसार से, बल्कि हमारे प्रेम को भगवान् पर, हर परिस्थिति में जो वे हमें देते हैं, स्थिर रखने में है।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, नवम स्कन्ध, त्रयोदश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज्ञान • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-9-chapter-13-dynasty-of-maharaja-nimi-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

